लोक कला, नृत्य एवं संगीत :– मिथिला की सांस्कृतिक धरोहर

ऋषि कुमार देव
शोधार्थी
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मिथिला की संस्कृति अतिप्राचीन काल से समृद्ध रही है। यहां की संस्कृति में लोक कला, मानस की अभिव्यंजना के प्रमुख साधनों में एक है। जिसमें जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं से अनुकूलता या संगति पाने की एक विशिष्ट प्रवृति होती है। परिणाम स्वंरूप इसकी अभिव्यक्ति में तद्नुकूल विविधता परिलक्षित होती है।

लोक संस्कृति की अन्य विधाओं के सदृश मिथिला में लोककला का विशिष्ट स्थान है। 'लोककला' को 'चित्रकला' के नाम से भी अभिहित किया गया है। जिसका निर्माण स्त्रियाँ करती हैं। रंग और कूची की सहायता से निर्मित ये विविध चित्र निश्चय ही मिथिला की नारियों के सौंदर्य बोध, सुरूचि एवं कलात्मक दृष्टिकोण के परिचायक हैं। स्त्रियाँ इन चित्रों को भूमि, दीवाल, पुरहर (कलश), पतिल (मिट्टी के बर्तन) तथा पीढ़ी (पीठिका) पर बनाया करती है। भूमि पर अथवा आँगन में बनाये जाने वाले चित्र को अरिपन (अल्पना) कहा जाता है। अरिपन साधारणतः चुमौन तथा कतिपय संस्कारों के अवसर पर दिया जाता है। मुंडन, उपनयन, विवाह, सांझ, सत्यनारायण की पूजा, देवोत्थान, दीपावली, कोजगरा आदि इनके उल्लेखनीय अवसर हैं। इन चित्रकारियों में अनेक देवी–देवताओं, पशु–पक्षियों, पत्रों–पुष्पों एवं कक्षों के चित्र बनाये जाते हैं। सभी चित्र प्रतीकात्मक होते हैं। अरिपन कुंडलिनी का प्रतीक है तो अष्टदल कमल हठयोग का।

मिथिला के लोकचित्रों में यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराएँ, धार्मिक मान्यताएँ, आंतरिक एकसूत्रता तथा परिलक्षित होती हैं।मिथिला की 'लोककलाएँ आज विश्व पटल परअपनी छाप छोड़ चुकी है। विदेशों में मिथिला चित्रकला खासकर मधुबनी पेंटिग की माँग काफी बढ़ गयी है। अतः यह कहा जा सकता है कि मिथिला की संस्कृति विश्वजनीन है।

लोकसंगीत :–

संगीत का मानव जीवन से व्यापक और गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य की आदिम प्रवृति है 'राग–लय' उसके खालीपन को भरता है। साहित्य, कला और संगीत से विहीन मनुष्य को पशु के समान माना गया है–

साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः
तणुं न खदन्नपि जीवमानः तद्भागधंयम परं पशुनाम।''[1]

पर पशुओं में भी राग के प्रति आकर्षण होता है। हिरन के बारे में कहा गया है कि वह नाद पर रीझकर अपने प्राण तक न्योछावर कर देता है–

नादरीझ तन देत मृग, नर धन हेत समेत,

ते रहीम पशु ते अधिक रीझेहु कछु न देत[2]

नाद और राग ही जीवन में प्राकृतिक और स्वाभाविक स्थिति है। हर्ष हो या विषाद, उल्लास हो या अवसाद लोककला, नृत्य एवं संगीत की अपनी खासी महत्ती भूमिका रही है जो आधुनिक युग नई पीढ़ी के लिए धरोहर के रूप में बच गई है जिसे अब संरक्षित करने एवं नई पीढ़ी के बीच प्रचारित, प्रसारित और स्थापित करने की आवश्यकता है क्योंकि इससे मानव जीवन सहज, सरल एव संचकित रूप से चलता है। संगीत मानव जीवन के हर क्षण से जुड़ा होता है। संगीत कानों से होता हुआ मन तक पहुँचता है और आत्मा को आनंदित करता है। संगीत के माध्यम से उत्पन ध्वनि तरंगे मनुष्य के शारीरिक और मानसिक विकारों को दूर करती है।

संगीत में हर प्राणी को वश में करने की शक्ति होती है। यह संगीत दो प्रकार के होते हैं–' शास्त्रीय संगीत' और 'लोक संगीत'। 'शास्त्रीय संगीत 'जहाँ विशिष्ट जन के बीच प्रचलित रहा, वहीं 'लोक संगीत' सामान्य जन के बीच, 'शास्त्रीय संगीत' मन को शांति प्रदान करता है। वह तन या मन को उत्तेजित नहीं करता। 'लोक संगीत' मन की शांति के साथ–साथ तन –मन का उत्तेजित और उत्पप्रेरित करता है। मिथिला के 'लोक संगीत' की विशेषता है।

'संगीत' का अर्थ है सम्यक रूपेण सुशोभित गीत और गीत को सम्यकता साज ही प्रदान करते हैं। संगीत को साजों से सजाने की प्रथा अत्यंत प्राचीन काल से ही है। अर्थववेद में दुंदुभी नामक साज की चर्चा हुई है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में तालयुक्त रामचरित गान के पाठ को संस्कृत लक्षण सम्पन्न लिखा गया है। भरत जब अपने मामा के घर से अयोध्या लौट रहे थे, तब उन्हे राम के बनवास और दशरथ के निधन का ज्ञान नहीं था। किन्तु वीणा, मृदंग एंव अन्य साजों का पूर्णतया मौन पाकर एक निश्चित अमंगल की आशंका उनके हृदय में उत्पन्न हुई थी। मार्कण्डेय पुराण में 'संगीत' की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के माध्यम से वाद्यों एवे उनके प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है। छांदोग्य उपनिषद में गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों का उल्लेख है।

कालिदास के समय में मृदंग, मुरज आदि चर्म वाद्यों का लय दिग्दर्शन हेतु प्रयोग प्रारंभ हुआ। यहीं से देशी संगीत अर्थात लोक संगीत का आंरभ हुआ, किन्तु वाद्यों के वादन की प्रथा अनवरत जारी रही। भारतीय वाद्यों को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया गया है– तत् सुषिर, अवनद्ध और धनवाद्य। 'तत्' श्रेणी के वाद्य स्वर प्रधान होते हैं। उनमें स्वरोत्पत्ति तार को आन्दोलित करके की जाती है। इसके अन्तर्गत तानपूरा, सितार, सरोद तथा वीणा आदि आते हैं। 'सुषिर' श्रेणी के स्वर वाद्यों मे स्वरोत्पति वायु के आन्दोलन द्वारा होती है। इस श्रेणी में बाँसुरी और शहनाई आती है। मंजीरा, झांझ जलतरंग काष्ठ तरंग, नलतरंग आदि भी इसी श्रेणी में आते हैं जिसे धनवाद्य कहा गया है। अवरद्ध वाद्य लय और ताल प्रधान होते हैं इसके अन्तर्गत आनेवाले वाद्यों में पखावज, ढोल, नक्कारा (नगाड़ा), नाल आदि आते हैं।

साज चूँकि संगत करते हैं, इसलिये जैसे–जैसे गायन और संगीत शैली में बदलाव आता गया, मिथिला के लोक संगीत के वाद्ययंत्रों में अब बदलाव आने लगा है। पुराने वाद्ययंत्र का स्थान अब फिल्मी संगीत से जुड़े वाद्ययंत्र लेने लगे है, जो मानव को जोड़ नहीं सकता। ऐसे में मिथिला क पारंपरिक लोक संगीत वाद्य जैसे– शहनाई, पिपही, ढोल, ढोलक, मृदंग मंजीरा, करताल, ताशा आदि को सुरक्षित रखना आवश्यक प्रतीत होता है।

लोक नृत्य :–

'लोकनृत्य' लोक और नृत्य (नाट्य) का संयुक्त रूप है। 'लोक शब्द' के द्वारा जो जनसमूह सामने आता है और उसकी कृति जब नाट्य रूप में कथोपकथन के माध्यम से किसी वस्तु को उपस्थित करती है तब वह लोकनाट्य कहलाती है। 'लोक–जीवन' से इसका अटूट सम्बन्ध होने के कारण लोक से सम्बन्धित अलग–अलग उत्सवों, प्रसंगों, शुभ कार्यो के समय इसका अभिनय होता है।

लोकनाट्य सम्पूर्ण भारत में अलग–अलग संज्ञा से प्रचलित है। उत्तर भारत में यह रामलीला, रासलीला, नौटंकी के रूप में प्रसिद्ध है। राजस्थान में इसे 'ख्याल', गुजरात में 'भवाई', महाराष्ट्र में 'तामाशा', बंगाल में 'जात्रा' के नाम से जाना जाता है। अलग–अलग प्रदेशों के रीति–रिवाजों, स्थानीय कल्पनाओं आदि के कारण विभिन्न संज्ञा तथा स्वरूपों में पाये जाते हैं, किन्तु मूलतः सभी में एक ही तत्त्व और उद्देश्य है।[3]

डॉ0 नगेन्द्र ने 'लोक नाट्य' को परिभाषित करते हुए लिखा है– लोकनाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक कथानकों, लोक विश्वासों और लोक तत्त्वों को समेटे चलता है और यही जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।[4] डॉ0 श्याम परमार ने लिखा है– ''लोक नाट्य से तात्पर्य नाटक के उस स्वरूप से है, जिसका सम्बन्ध विशिष्ट समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से है, जो परम्परा से अपने जनसमूह के मनोरंजन का साधन रहा है।''[5]

उक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि जनसामान्य को आह्लादित, हर्षित करने वाला नाट्य लोकनाट्य है। मिथिला का 'लोकनाट्य' भारतीय लोकनाट्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाये हुआ है, जिसका अपना इतिहास

है। हिमालय एवं गंगा के मध्य अवस्थित मिथिला सांस्कृतिक दृष्टि से उर्वर है। हिमालय इसकी प्रेरणा का स्रोत है, वही नदियाँ इसकी सांस्कृतिक उद्‌भास का। दूसरी ओर वन–पर्वत से भरी शस्य–श्यामल भूमि इसका रंगमंच। मेघ की गर्जना, बिजली का चमकना, हवा का प्रलयकारी स्वरूप, कोयल की कूक, मोर का नाचना, पतझड़, वसंत, हेमंत आदि ऋतुएं, प्रकृति का अनन्त असीम योग लोक नाट्य का उद्‌गम एवं विकास का मूलाधार है। मिथिलांचल में विभिन्न प्रकार के लोकनाट्य प्रचलित है– 'सामाजिक', धार्मिक और अन्य लोक नाट्य।

'सामाजिक लोक–नाट्य' का सम्बन्ध साधारणतः मनुष्य के इहलौकिक जीवन से सबद्ध होता है। इस प्रकार के लोकनाट्य में जट–जटिन, श्यामा चकेवा (सामा–चकेवा) जालिम सिंह का नाच, विरहानाच, विदेशिया नाच तथा उत्तम चंद का नाच मुख्य है। धार्मिक लोक नाट्य का संबंध मानव के आध्यात्मिक जीवन से होता है। ऐसे नाट्यो मे रामलीला, रास, यात्रा पार्टी इत्यादि आते है।

मिथिला में ऐसे लोकनाट्य भी प्रचलित हैं जो मूलतः लोकगाथाएँ है, किन्तु अब रंगमंच पर उनका अभिनय प्रस्तुत किया जाता है– जैसे हिरनी–विरनी का नाच, सल्हेश का नाच, दीना भद्री एवं गुगली पटवार का नाच आदि।

मैथिली लोकनाट्य साधारणतः पर्व–त्योहार अथवा किसी अन्य मांगलिक अवसरों पर अभिनीत होते हैं। अभिनय कभी तो व्यवसाय मंडली के द्वारा किया जाता है तो कभी ग्राम के स्वेच्छासेवी कलाकारों के द्वारा, सरस्वती पूजा, छठ, दीपावली एवं दुर्गापूजा के उपलक्ष्य में ग्रामीण छात्रगण भी जनमनोरंजनार्थ लोक नाट्य का मंचन करते हैं।

'जट–जटिन' मिथिला का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। वर्षा नहीं होने की स्थिति में गाँव की बालाएँ अपने अभिनय के माध्यम से इन्द्रदेव को रिझाने का प्रयास करती हैं। इसका आयोजन रात में होता है। नाटक का कथोपकथन, परंपरागत, गीतात्मक प्रश्नोत्तर शैली में होता है।

श्यामा–चकेवा :– यह भी एक गीत नाट्य है। कार्तिक शुक्ल सप्तमी से कार्तिक पूर्णिमा की रात तक इसके गीत गाये जाते हैं। श्यामा, चकेवा, वृन्दावन, डाला, सतभैया, झांझी कुत्ता, पौती आदि मिट्‌टी के बनाये जाते हैं। यह लोकनाट्य भाई–बहन के पारस्परिक प्रेम को उद्‌घाटित करता है। चुगल की निंदा और भाई की प्रशंसा बालाएँ गीत के माध्यम से उद्‌घाटित करती हैं।

जलिम सिंह :– यह लोकनाट्य अन्तर्जातीय प्रेम विवाह को उद्‌घाटित करता है। समाज द्वारा लाख विरोध के बावजूद भी क्षत्रिय जालिम सिंह और निम्नवर्गीय मूंगा अपनी प्रेम कथा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। जालिम सिंह के अभिनय में स्त्री एवं पुरूष पात्रों की भूमिका का निर्वहन पुरूष पात्र ही करते हैं।

विरहा :– मिथिला की निम्न जातियों के बीच प्रचलित है। धोबी–धोबीन के दांपत्य जीवन की विविधता इसमें उद्‌घाटित होती है।

विदेशिया :– इस लोकनाट्य में विरहिणी के पति–प्रेम, विवाह, मिलनोत्कंठा, अभिलाषा एवं अन्य मानसिक स्थितियों का मार्मिक चित्रण होता है।

रामलीला :– रामलीला भगवान राम की विभिन्न लीलाओं एवं चेष्टाओं पर आधारित लोकनाट्य है।

निष्कर्षः यह कहा जा सकता है कि मिभिला के विशाल जनसमूह की आशा, आकाक्षा, विजय, पराजय, सहस, संघर्ष की जीवंत कथा लोकनाट्यों के माध्यम से उजागर होता है।'लोक संस्कृति' के विविध आयाम अपने आप में विशिष्ट और जन जीवन से जुड़े होते है, जिस तरह मिथिला में एक कहावत प्रचलित है– तुलसी दल न तो कोई बड़ होता है न कोई छोटा। अर्थात् अपने आपद में सभी पूर्ण होता है। लोकगीत लोक संस्कृति का एक सशक्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी विधा है, जिसका सम्बनध मानव जीव के उत्स से लेकर अवसान तक होता है। यहाँ मिथिलांचल में प्रचलित गीतों एवं तत्सम्बन्धी अवसरों का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

जन्मगीत :– जन्म संस्कार मानव जीवन के महत्वपूर्ण संस्कारों में एक है। संतान प्राप्ति हर भारतीय नारी के जीवन में उल्लास का क्षण होता है। बच्चे के जन्म का शुभ और सुखद समाचार सुनकर पास पड़ोस तथा टोले मुहल्ले के लोगों

के बीच उमंग का संचार हो जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत को 'सोहर' कहा जाता है। सोहर छंद में रचे होने के कारण इसका नाम सोहर पड़ा।

मिथिलांचल में उपलब्ध सोहरों में कुछ राम विषयक, कुछ कृष्ण विषयक और कुछ अन्य सामान्य बालकों से सम्बंद्ध है।

राम विषयक सोहरों में अयोध्या नरेश दशरथ एवं उनकी रानियों की पुत्र लालसा, पुत्र न होने की चिंता, पुत्रोपलब्धि के पश्चात् डगरिन, चमारिन एवं अन्य याचकों को पुरस्कृत करने तथा परिजन के मन में व्याप्त उल्लास का वर्णन रहता है। पुत्र जन्म सुखद समाचार सुनते ही राजा दशरथ आनंद विह्वल हो उठते हैं। दरवाजे पर बाजे–बजाने लगते है–

कहांक सिलोट कहाँक लोढ़ी, कहाँ से जड़ी लाउ रे।
ललना पिस पिस राखल कटोरा भरि कौशिल्या रानी औखद हे।
एक घंटि पीलनि कौशिल्या रानी, दोसर सुमित्रा रानी रे
ललना लोढ़ी धोइ पीलनि केकई रानी, तीनू भेली गर्भवती रे
घर से बाजथि कौशिल्या रानी अओर कौशिल्य रानी रे
ललना, राखि जोखि अवध लुटाएब किछु नहि राखब रे
घर से बाजथि केकई रानी अओर सुमित्रा रानी रे
ललना, राखि जोखि अवध लुटाएव हमहूँ गर्भवती रे
किनका के जनमल राम कि किनका के लछुमन रे
ललना रे, किनका के जनमल भरत कि तीनू घर सोहर रे
कौशिल्य के जनमल राम, सुमित्रा के लछुमन रे
ललना रे, केकई के जनमल भरत कि तीनू घर सोहर रे।

कृष्णा विषयक सोहरों में नंद–यशोदा पुत्र के लिए प्रायः चिंतित नहीं दीख पड़ते। कृष्ण जन्मोपरांत, लोगों को हर्ष तो होता है, परन्तु इसलिये नहीं कि राजा नंद के घर पुत्र ने जन्म लिया है, बल्कि इसलिए कि कृष्ण त्रिभुवन नाथ है। कंस का संहार करने वाले और संसार का बंधन से मुक्त करने वाले कृष्ण सम्बन्धी गीतों में देवकी की प्रसव पीड़ा, वसुदेव का डगरिन को बुलाने, नंद–यशोदा के उल्लास तथा कृष्ण के अलौकिक रूप का विशद चित्रण मिलता है।''[6] कृष्ण विषयक एक सोहर इस प्रकार है–

आजु मोरा देव दहिन मेल, मोनमगन भेल रे
ललना रे, रूकमिनि भेल राज जोग ताहि नहायब रे।

संदर्भ सूची :–

1. आजकल जुलाई 2008 पृं0– 2
2. रहीम के दोहे राष्ट्रभाषा गद्य संग्रह
3. लोक साहित्य बापू राव देसाई पृ0– 118
4. भारतीय नाट्य साहित्य सं0 डॉ0 नगेन्द्र पृं0– 76
5. मैथिली लोक साहित्य सं0 चन्द्र नाथ मिश्र अमर पृ0– 78 से उद्धृत
6. सोहर समदाओन : बंबई पुस्तक मंदिर मधुबनी पृं0– 67

ऋषि कुमार देव
शोधार्थी
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा